श्रीजीरावल्लि महातीर्थ का

ऐतिहासिक वृत्तान्त

—प्रा० सोहनलाल पटनी

जैन तीर्थों की परम्परा में श्री जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ का अपना विशिष्ट स्थान है। यह प्रसिद्ध मन्दिर अरावली पर्वतमाला की जीरापल्ली नाम की पहाड़ी की गोद में बसा हुआ है। यह बहुत ही प्राचीन मन्दिर है। हरे-भरे जंगलों से घिरा यह मन्दिर अपनी भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। सदियों से यह आचार्यों और धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का शरण स्थल रहा है। यह जैन धर्म का सांस्कृतिक और धार्मिक केन्द्र रहा है। इसके पाषाणों पर अंकित लेख इसकी प्राचीनता और गौरव की गाथा गा रहे हैं। हर वर्ष हजारों की संख्या में श्रद्धालु भक्तजन इस मन्दिर के दर्शन करके प्रेरणा और शक्ति का अर्जन करते हैं।

आज भी प्रतिष्ठा शान्तिस्नात्र आदि शुभ क्रियाओं के प्रारम्भ में "ॐ ह्रीं श्री जीरावला पार्श्वनाथाय नमः" पवित्र मन्त्राक्षर रूप इस तीर्थाधिपति का स्मरण किया जाता है। इस तीर्थ की महिमा इतनी प्रसिद्ध है कि मारवाड़ व घाणेराव, नाडलाई, नाडोल, सिरोही एवं बम्बई के घाठकोपर आदि स्थानों में जीरावला पार्श्वनाथ भगवान की स्थापना हुई।

जैन शास्त्रों में इस तीर्थ के कई नाम हैं—जीरावल्ली, जीरापल्ली, जीरिकापल्ली एवं जयराजपल्ली, पर इसका नामकरण मेरी मान्यतानुसार इसके पर्वत जयराज पर ही हुआ है। जयराज की उपत्यका में बसी नगरी जयराजपल्ली। श्री जिनभद्रसूरिजी के शिष्य सिद्धान्तरुचिजी ने श्री जयराजपुरीश श्री पार्श्वनाथ स्तवन की रचना की है। इसी जयराजपल्ली का अपभ्रंश रूप आज जीरावला नाम में दृष्टिगोचर हो रहा है।

सिरोही शहर से ३५ मील पश्चिम की दिशा में और भीनमाल से ३० मील दक्षिण पूर्व दिशा में जीरावला ग्राम में यह मन्दिर स्थित है। यह मरुप्रदेश का अंग रहा है। प्राचीन काल में जीरावल एक बहुत बड़ा और समृद्धशाली नगर था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह नगर बहुत समृद्ध था। यह देश परदेश के व्यापारियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है और शूरवीरों की जन्म और कर्म भूमि रहा है। जीरावल का एक अपना विशिष्ट इतिहास है जिसकी झलक तीर्थमालाओं एवं प्राचीन स्तोत्रों के माध्यम से मिलती है।

जनश्रुति है कि इस भूमि पर महावीरस्वामी ने विचरण किया है। भीनमाल में वि. सं. १३३३ के मिले लेख से इसकी पुष्टि होती है। चन्द्रगुप्त मौर्य के भारतीय राजनीति के रंगमंच पर प्रवेश करने पर यह मौर्य साम्राज्य के अधीन था। अशोक के नाति सम्प्रति के शासनारूढ होने पर यह प्रदेश उसके राज्य के अधीन था। उसके समय में यहां जैन धर्म की बहुत उन्नति हुई। उसके समय में यहां कई जैन मन्दिरों के निर्माण का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख मिलता है। इतिहासकार ओझाजी ने विक्रम संवत् की दूसरी शताब्दी के मिले शिलालेखों के आधार पर कहा है कि यहां पर राजा संप्रति के पहले भी जैन धर्म का प्रचार था। मौर्यों के पश्चात् क्षत्रपों का इस प्रदेश पर अधिकार था। महाक्षत्रप रुद्रदामा के जूनागढ़ वाले शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि यह मरुराज्य सन् ५५३ ई. में उसके राज्य के अन्तर्गत था।

जीरावला पार्श्वनाथ मन्दिर वि. सं. ३२६ में कोडीनगर सेठ अमरासा ने बनाया था। यह कोडीनगर शायद आज के भीनमाल के पास स्थित कोडीनगर ही है जो काल के थपेड़ों से अपने वैभव को खो चुका है। कोडीनगर तट पर सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेष प्राप्त हो सकते हैं।

ऐसी जनश्रुति है कि इस मन्दिर की पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा जमीन में से निकली है। इसका वृतान्त इस प्रकार मिलता है :—एक बार कोडीग्राम के सेठ अमरासा को स्वप्न आया। स्वप्न में उन्हें भगवान् पार्श्वनाथ के अधिष्ठायक देव दिखे। उन्होंने सेठ को जीरापल्ली शहर के बाहर धरती के गर्भ में छिपी हुई प्रतिमा को स्थापित करने के लिये कहा। यह प्रतिमा गांव के बाहर की एक गुफा में जमीन के नीचे थी। अधिष्ठायक देव ने सेठ अमरासा को इस भूमि स्थित प्रतिमा को उसी पहाड़ी की तलहटी में स्थापित करने को कहा। सुबह उठने पर सेठ ने स्वप्न की बात जैनाचार्य देवसूरीश्वरजी, जो कि उस समय वहां पर पधारे हुये थे, को बतायी। आचार्य देवसूरिजी को भी इसी तरह का स्वप्न आया था। यह बात सारे नगर में फैल गई और नगरवासी इस मूर्ति को निकालने के लिए उतावले हो गये। आचार्य देवसूरि और सेठ अमरासा निर्दिष्ट स्थान पर गये और बड़ी सावधानी से उस मूर्ति को निकाला। प्रतिमा के निकलने की खबर सुनकर आसपास के क्षेत्रों के लोग भगवान के दर्शन के लिये उमड़ पड़े। कोडीनगर और जीरापल्ली के श्रावकों में उस प्रतिमा को अपने-अपने नगर में ले जाने के लिये होड़ लग गई। परन्तु आचार्य देवसूरिजी ने अधिष्ठायकदेव की आज्ञा का पालन करते हुए प्रतिमा को जीरापल्ली में ही स्थापित करने का निश्चय किया। विक्रम संवत् ३३१ में आचार्य देवसूरि ने इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। विक्रम संवत् ६६३ में प्रथम बार इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ। जीर्णोद्धार कराने वाले थे सेठ जेतासा खेमासा। वे १० हजार व्यक्तियों का संघ लेकर श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान् के दर्शन के लिये आये थे। मन्दिर की बुरी हालत को देखकर उन्होंने जैन आचार्य श्री मेरूसूरीश्वरजी महाराज, जो उन्हीं के साथ आये थे, को इस मन्दिर के जीर्णोद्धार करने की इच्छा प्रकट की। आचार्य श्री ने इस पुनीत कार्य के लिये उन्होंने अपनी आज्ञा प्रदान कर दी।

चौथी शताब्दी में यह प्रदेश गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत था। गुप्तों के पतन के पश्चात् यहां पर हूणों का अधिकार रहा। हूणों के सम्राट् तोरमाण ने गुप्त साम्राज्य को नष्ट कर अपना प्रभाव यहां पर स्थापित किया। हूण राजा मिहिरकुल और तोरमाण के सामन्तों द्वारा बनाये हुये कई सूर्य मन्दिर जीरावला के आसपास के इलाकों में आये हुये हैं जिनमें वरमाण, करोडीध्वज (अनादरा), हाथल के सूर्य मन्दिर प्रसिद्ध हैं। हाथल का सूर्य मन्दिर तो टूट चुका है, पर करोडीध्वज और वरमाण के सूर्य मन्दिरों की प्रतिष्ठा आज भी अक्षुण्ण है। वरमाण का सूर्य मन्दिर तो भारतवर्ष के चार प्रसिद्ध सूर्य मन्दिरों में से एक है।

गुप्तकाल के जैनाचार्य हरिगुप्त तोरमाण के गुरु थे। इनके शिष्य देवगुप्तसूरि के शिष्य शिवचन्द्रगणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महत्तर ने इस मन्दिर की यात्रा की। उद्योतनसूरि कृत कुवलयमाला[1] प्रशस्ति के अनुसार, शिवचन्द्रगणि के शिष्य यक्षदत्तगणि ने अपने प्रभाव से यहां पर कई जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया, जो आसपास के इलाकों में आज भी विद्यमान हैं। वलभीपुर के राजा शीलादित्य को जैन धर्म में दीक्षित करने वाले आचार्य धनेश्वरसूरि ने इस मन्दिर की यात्रा की। यक्षदत्तगणि के एक शिष्य वटेश्वरसूरि ने आकाशवप्र के एक नगर में एक रम्य जैन मन्दिर का निर्माण करवाया, जिनके दर्शनमात्र से लोगों का क्रोध शान्त हो जाता था। आकाशवप्र का अर्थ होता है आकाश को छूने वाले पहाड़ का उतार। जीरावला का यह मन्दिर भी आकाश को छूने वाले पर्वत के उतार पर स्थित है और एक ऐसी किंवदन्ती है कि जीरावला का यह मन्दिर आकाश मार्ग से यहां लाया गया है। हो सकता है आकाश मार्ग से लाया हुआ यह मन्दिर आकाशवप्र नामक स्थान की सार्थकता सिद्ध करता हो। वटेश्वरजी के शिष्य तत्वाचार्य थे। उद्योतनसूरिजी के विद्यागुरु आचार्य हरिभद्रसूरि थे, जो चित्रकूट (वर्तमान चित्तौड़) निवासी थे। उन्हें जीरावला के मन्दिर की पुनः प्रतिष्ठा से सम्बन्धित बताया जाता है। अपने जैन साहित्य के संक्षिप्त इतिहास के पृष्ठ १३३ पर मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने आकाशवप्र नगर को अनन्तपुर नगर से जोड़ा है। मुनि कल्याणविजयजी ने इस नगर को अमरकोट से जोड़ा है। पर वटेश्वरसूरिजी का आकाशवप्र सिंध का अमरकोट नहीं हो सकता। वह तो भीनमाल के आसपास के प्रदेशों में ही होना चाहिये था, और वह मन्दिर भी प्रसिद्ध होना चाहिये। यह दोनों ही शर्तें जीरावला के साथ जुड़ी हुई हैं। क्योंकि जैन तीर्थ प्रशस्ति में जीरावला को विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

विक्रम संवत् की सातवीं शताब्दी के अन्त में यहां पर चावड़ा वंश का राज्य रहा। वसन्तगढ़ में वि. सं० ६८२ के शिलालेख से इस बात की पुष्टि होती है। इस लेख के अनुसार संवत् ६८२ में वर्मलात नाम के राजा का वहां पर शासन था और उसकी राजधानी भीनमाल थी। वर्मलात के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी व्याघ्रमुख का यहां पर शासन था। वलभीपुर के पतन के पश्चात् वहां पर एक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। अत: वहां के बहुत से लोग यहां आकर बस गये। पोरवाल जाति को संगठित करने वाले जैनाचार्य हरिभद्रसूरिजी ने (वि. सं. ७५७ से ८२७) यहां की यात्रा की और इस मन्दिर की पुनः प्रतिष्ठा करवायी। तत्वाचार्य वीरभद्रसूरि ने भी यहां की यात्रा की, उन्होंने जालोर और भीनमाल के कई मन्दिरों का निर्माण कराया। सिद्ध सारस्वत स्तोत्र के रचयिता बप्पभट्टसूरि भीनमाल, रामसीन, जीरावल एवं मुण्डस्थला आदि तीर्थों की यात्रा कर चुके थे।

आठवीं सदी के प्रारम्भ में यशोवर्मन् के राज्य का यह प्रदेश अंग था। इतिहास प्रसिद्ध प्रतिहार राजा वत्सराज के समय में यह प्रदेश उसके अधीन था। उसकी राजधानी जाबालिपुर (जालोर) थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र नागभट्ट ने वि. सं० ८७२ में इस प्रदेश पर राज्य किया। नागभट्ट ने जीरावल के पास नागाणी नामक स्थान पर नागजी का मन्दिर बनवाया जो आज तक भी टेकरी पर स्थित है। वह अपनी राजधानी जालोर से कन्नौज ले गया। महान् जैनाचार्य सिद्धर्षि और उनके गुरु दुर्गस्वामी ने वि. संवत् की दसवीं सदी में यहां की यात्री की। दुर्गस्वामी का स्वर्गवास भिन्नमाल (भीनमाल) नगर में हुआ था। नागभट्ट की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में रामचन्द्र, भोजराज और महेन्द्रपाल प्रमुख हैं। उन्होंने इस प्रदेश पर शासन किया। प्रतिहारों के के पतन के पश्चात् यह प्रदेश परमारों के अधीन रहा। परमार राजा सियक (हर्षदेव) का यहां शासन होना सिद्ध

१. इसकी रचना जालोर में हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है। ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में यह क्षेत्र राजा धुंधुक के अधीन रहा। चालुक्य राजा भीमदेव ने जब धुंधुक को अपदस्थ किया तो यह प्रदेश उसके अधीन रहा। भीमदेव के सिंहसेनापति विमलशाह के यहां पर शासन करने की बात सिद्ध हुई है। मन्त्रीश्वर विमलशाह ने विमलवसहिं के भव्य मन्दिर का निर्माण आबू पर्वत पर करवाया। उन्होंने कई जैन मन्दिरों का जोर्णोद्धार कराया और उन्हें संरक्षण प्रदान किया। बहुत समय तक यह प्रदेश गुजरात के चालुक्यों के आधीन रहा। इस मन्दिर का दूसरी बार जीर्णोद्धार वि. सं० १०३३ में हुआ। तेतली नगर के सेठ हरदास ने जैनाचार्य सहजानन्द जी के उपदेश से इस पुनीत कार्य को करवाया। तेतली नगर निवासी सेठ हरदास का वंश अपनी दानप्रियता के लिए प्रसिद्ध था। उसी वंश परम्परा का इतिहास इस प्रकार मिलता है :—

श्रेष्ठी वर्ग जांजण
|
धर्मपत्नी स्योणी
|
श्रेष्ठीवर्ग बाघा
|

धर्मसी	मन्नासी	धीरासा

धीरासा की धर्मपत्नी अजादे से हरदास उत्पन्न हुआ।

विक्रम संवत् ११५० से यह सिद्धराज के राज्य का अंग था। वि. सं० ११८६ के भीनमाल अभिलेख में चालुक्य सिद्धराज के शासन का उल्लेख मिलता है। वि. संवत् ११६१ के लगभग जैनाचार्य समुद्रघोष और जिनवल्लभसूरि ने यहां की यात्रा की। लगभग इसी काल में जैन धर्म के महान् आचार्य हेमचन्द्राचार्य ने यहां की यात्रा की। वे कवि श्रीपाल, जयमंगल, वाग्भट्ट, वर्धमान और सागरचन्द्र के समकालीन थे। हर्षपुरीयगच्छ के जयसिंहसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि ने यहां की यात्रा की। अभयदेवसूरि को सिद्धराज ने मल्लधारी की उपाधि दी थी। इन्हीं आचार्य ने रणथम्भोर के जैन मन्दिर पर सोने के कुम्भ कलश को स्थापित किया था।

खरतरगच्छ के महान् जैनाचार्य दादा जिनदत्तसूरि ने भी यहां की यात्रा की। उनकी पाट परम्परा में हुए जिनचन्द्रसूरिजी का नाम मन्दिर की एक देहरी पर के लेख में मिलता है।

संवत् ११७५ के पश्चात् यहां पर भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। अतः यह नगरी उजड़ गई और बहुत से लोग गुजरात जाकर बस गये।

सिद्धराज के पश्चात् यह प्रदेश कुमारपाल के शासन का अंग था। उसने जैन धर्म को अंगीकार किया और जैनाचार्यों और गुरुओं को संरक्षण प्रदान किया। उसके द्वारा कई जैन मन्दिरों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। किराडू के वि. सं. १२०५ और १२०८ के कुमारपाल के अभिलेख से उसके राज्य का विस्तार यहां तक होना सिद्ध होता है। जालोर से प्राप्त वि. सं. १२२१ के कुमारपाल के शिलालेख से भी इस बात की पुष्टि होती है।

कुमारपाल के पश्चात् अजयपाल के राज्य का यह अंग था। गुजरात के शासक अजयपाल और मूलराज के समय में यहां पर परमार वंशीय राजा धारावर्ष का शासन था। मुहम्मदगोरी की सेना के विरुद्ध हुये युद्ध में उसने भाग लिया था। वि. सं. की तेरहवीं शताब्दी तक यहां पर परमारों का शासन रहा। वि. सं. १३०० के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगभग उदयसिंह चौहान का यहां शासन रहा। भिन्नमाल में वि. सं. १३०५ और १३०६ के शिलालेख प्राप्त हुये है जो उसके शासन के होने के प्रमाण हैं। उस समय उसकी राजधानी जालोर थी। उदयसिंह के पश्चात् उसके पुत्र चाचिगदेव का यहां राज्य रहा। वि. सं. १३१३ का चाचिगदेव का एक शिलालेख सूंधा पर्वत पर प्राप्त हुआ है। चाचिगदेव के पश्चात् दशरथ देवड़ा का यहां शासन रहा। वि. सं. १३३७ के देलवाड़ा के अभिलेख में उसे मरुमण्डल का अधीश्वर बताया गया है। वि. सं. १३४० के लगभग यह प्रदेश बीजड़ देवड़ा के अधीन रहा। बीजड़ के बाद लावण्यकर्ण (लूणकर्ण) लुम्भा के अधीन यह प्रदेश था। लुम्भा बहुत ही धर्म सहिष्णु था। परमारों के शासन काल में आबू के जैन मन्दिरों की यात्रा करने वाले यात्रियों को कर देना पड़ता था। लुम्भा ने उसे माफ कर दिया। उसने आसपास के इलाकों में बहुत से जैन मन्दिर बनाने में धन व्यय किया। हो सकता है जीरावल को भी उनका सहयोग मिला हो।

अलाउद्दीन की सेनाओं ने जब जालोर आदि स्थानों पर हमला किया तो इस मन्दिर पर भी आक्रमण किया गया। इस मन्दिर के पास में ही अम्बादेवी का एक वैष्णव मन्दिर था। अत्याचारियों ने पहले उस मन्दिर की धन-सम्पत्ति को लूटा और सारा मन्दिर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उस मन्दिर में बहुत सी गायों का पालन पोषण होता था। हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिये उन अत्याचारियों ने उन गायों को भी मार दिया। वहां से वे जीरावला पार्श्वनाथ के मन्दिर की ओर बढ़े। मन्दिर में जाकर उन्होंने गो-मांस और खून छांटकर मन्दिर को अपवित्र करने की कोशिश की। ऐसा कहते हैं कि मन्दिर में रुधिर छांटने वाला व्यक्ति बाहर आते ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। बाहर ही बहुत बड़े सर्प ने उसे डंक मारा और वह वहीं पर धराशाही हो गया। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के घावों को भरने में लुम्भा ने बहुत सहायता की और जैन धर्म के गौरव को बढ़ाया। लुम्भाजी का उत्तराधिकारी तेजसिंह था। उसने अपने पिता की नीति का पालन किया और जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया। तेजसिंह के पश्चात् कान्हड़देव और सामंतसिंह के अधीन यह प्रदेश रहा।

पंडित श्री सोमधगणी विरचित उपदेशसप्तति के जीरापल्ली सन्दर्भ में जीरावल तीर्थ सम्बन्धी कथा इस प्रकार दी गई है:—

सं. ११०९ में ब्रह्माण (आधुनिक वरमाण) स्थान में धांधल नाम का एक सेठ रहता था। उसी गांव में एक वृद्ध स्त्री की गाय सदैव सेहिली नदी के पास देवीत्री[1] गुफा में दूध प्रवाहित कर आती थी। शाम को घर आकर यह गाय दूध नहीं देती थी। पता लगाने पर उस वृद्धा को स्थान का पता लगा यह सोचकर कि यह स्थान बहुत चमत्कार वाला है, धांधल को बताया। धांधलजी ने मन में सोचा कि रात को पवित्र होकर उस स्थान पर जायेंगे, वे वहां जाकर के परमेष्ठि भगवान् का स्मरण कर एक पवित्र स्थान पर सोये। उस रात में उन्होंने स्वप्न में एक सुन्दर पुरुष को यह कहते हुए सुना कि जहां गाय दूध का क्षरण करती है वहां पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति है। वह व्यक्ति उनका अधिष्ठायक देव था। प्रातःकाल धांधलजी सभी लोगों के साथ उस स्थान पर गये। उसी समय जीरापल्ली नगर के लोग भी वहां आये और कहने लगे कि अहो! तुम्हारा इस स्थान पर आगमन कैसा? हमारी सीमा की मूर्ति तुम कैसे लेजा सकते हो? इस तरह के विवाद में वहां खड़े वृद्ध पुरुषों ने कहा कि भाई गाड़ी में एक आपका व एक हमारा बैल जोतो जहां गाड़ी जायगी वहां मूर्ति स्थापित होगी। इस तरह करते यह

१ वरमाण व जीरावल के बीच बूडेश्वर महादेव के मन्दिर के पास यह गुफा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिब जीरापल्ली नगर में आया। सभी महाजनों ने वहां प्रवेशोत्सव किया। पहले चैत्य में स्थापित वीर बिंब को हटाकर श्री संघ की अनुमतिपूर्वक बिंब को इसी चैत्य में स्थापित किया। बाद में वहां पर अनेक संघ आने लगे तथा उनका मनोरथ उनका अधिष्ठायक देव पूर्ण करने लगा। इस तरह यह तीर्थ हुआ।

ऐसी मान्यता है कि यवन सेना के द्वारा मूर्ति खण्डित होने पर अधिष्ठायक देव की आज्ञा से दूसरी मूर्ति की स्थापना हुई, पहली मूर्ति नवीन मूर्ति के दक्षिण भाग में स्थापित की गई थी। इस मूर्ति को सर्वप्रथम पूजा जाता है एवं इस मूर्ति को दादा पार्श्वनाथ की मूर्ति के नाम से जाना जाता है।

धांधलजी द्वारा निर्मित इस नवीन पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा वि. सं. ११९१ में आचार्य श्री अजितदेवसूरि ने की। वीर वंशावली में उसका उल्लेख इस प्रकार दिया गया है:—

"तिवारइं धाधलइं प्रासाद निपजावी महोत्सव वि. सं. ११९१ वर्षे श्री पार्श्वनाथ प्रासादे स्थाप्या श्री अजितदेवसूरि प्रतिष्ठया"

इस प्रकार यह तीसरी बार की प्रतिष्ठा थी। पहली (वि. सं. ३३१) अमरासा के समय में आचार्य देवसूरिजी ने करवाई।

दूसरी बार मन्दिर का निर्माण यक्षदत्तगणी के शिष्य वटेश्वरसूरिजी ने आकाशवप्र नगर के नाम से मन्दिर की स्थापना की। तीसरी बार धांधलजी के समय में मन्दिर बना। कुछ इतिहासकार वटेश्वरसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित आकाशवप्र नगर के मन्दिर की बात विवादास्पद होने के कारण स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार मन्दिर की प्रतिष्ठा तीसरी बार हुई न कि मन्दिर का निर्माण। पहली प्रतिष्ठा आचार्य देवसूरिजी ने, दूसरी प्रतिष्ठा आचार्य हरिभद्रसूरिजी ने और तीसरी बार यह प्रतिष्ठा आचार्य अजितदेवसूरिजी ने की।

धांधलजी द्वारा निर्मित मन्दिर व मूर्ति को नुकसान अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा पहुँचाने की बात की पुष्टि जीरापल्ली मण्डन पार्श्वनाथ विनती नाम के एक प्राचीन स्रोत से इस प्रकार से होती है:—

"तेरसइं अडसट्ठा (१३६८) वरिसिहिं, असुरह दलु जीतउ जिणि हरिसिंहि भसमग्रह विकराले।।" (कडी ९)

कान्हडदेव प्रबंध के अनुसार एवं अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि संवत् १३६७ में अलाउद्दीन खिलजी ने सांचोर के महावीर मन्दिर को नष्ट किया और उसी समय उसने जीरावल के मन्दिर को भी नुकसान पहुँचाया।

उपदेश तरंगिणी के पृष्ठ १८ के अनुसार संघवी पेथडसा ने संवत् १३२१ में एक मन्दिर बनवाने की बात लिखी है परन्तु शायद यह मन्दिर आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिया गया होगा।

महेश्वर कवि लिखित काव्य मनोहर नामक ग्रन्थ के सातवें सर्ग ३२ वें श्लोक में लिखा हुआ है कि मांडवगढ़ के बादशाह आलमशाह के दरबारी श्रीमाल वंशीय सोनगरा जांजणजी सेठ के छह पुत्रों के साथ संघवी आल्हराज ने इस तीर्थ में ऊंचे तोरणों सहित एक सुन्दर मंडप बनवाया।

जीरापल्ली महातीर्थे, मण्डपं तु चकार सः।
उत्तोरणं महास्तभं, वितानांशुकभूषणम्।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान मन्दिर के पीछे की टेकरी पर एक प्राचीन किले के अवशेष दिखाई देते हैं जो शायद कान्हड़देव चौहान के सामंतों का रहा होगा। सन् १३१४ में कान्हडदेव चौहान मारे गये उसके बाद मण्डार से लेकर जालोर तक का इलाका अलाउद्दीन खिलजी के वंशवर्ती रहा। न मालूम कितने अत्याचार इस मन्दिर पर और जीरापल्ली नगर पर हुए होंगे उसके साक्षी तो यह जयराज पर्वत और भगवान् पार्श्वनाथ हैं।

सन् १३२० के बाद सिरोही के महाराव लुम्भा का इस इलाके पर अधिकार हो गया परन्तु अजमेर से अहमदाबाद जाने का यह रास्ता होने के कारण समय समय पर मन्दिर व नगरी पर विपत्तियाँ आती रहीं। यहाँ के सेठ लोग नगरी को छोड़ कर चले गये एवं चौहानों ने भी इस स्थान को असुरक्षित समझ कर छोड़ दिया।

वि. सं. १८५१ के शिलालेख के अनुसार इस मन्दिर में मूलनायक रूप में पार्श्वनाथ विराजमान थे। पर इसके बाद किसी कारणवश भगवान् नेमिनाथ को मूलनायक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया था। इस घटना का उल्लेख किसी भी शिलालेख से ज्ञात नहीं होता। मन्दिर के बाईं ओर की एक कोठडी में अब भी पार्श्वनाथ की दो मूर्तियां विराजमान हैं एवं दूसरी कोठरी में भगवान् नेमिनाथ।

ऐसी मान्यता है कि महान् चमत्कारी भगवान् पार्श्वनाथ की अमूल्य प्रतिमा कहीं आक्रमणकारियों के द्वारा खण्डित न कर दी जाय इस भय से पार्श्वनाथजी की मूर्ति को गुप्त भण्डार में विराजमान कर दिया गया हो और तब तक की अन्तरिम व्यवस्था के लिए ज्योतिष के फलादेश के अनुसार नेमिनाथ भगवान् की मूर्ति को प्रतिष्ठित कर दिया गया हो।

समय समय पर जीर्णोद्धार होने के कारण एवं ऐतिहासिक शोध खोज की दृष्टि न होने के कारण मन्दिर की मरम्मत करने वाले कारीगरों की छैनो और हथौड़े से मन्दिर के पाटों और दीवारों पर के शिलालेख बहुरत्ना वसुन्धरा के गहन गर्त में समा गये हैं। शायद वे किसी समय की प्रतीक्षा में होंगे जब किसी महान् आचार्य के आशीर्वाद से प्रकट होंगे, तब इस मन्दिर की अकथ कहानी प्रकट होगी।

प्राचीन उल्लेखों के आधार पर पता लगता है कि इस मन्दिर की दीवारों पर दुर्लभ भित्तिचित्र थे किन्तु समय समय पर नये रंग रोगन के काम के कारण; कहीं संगमरमर चढाने के कारण, कहीं घिसाई के कारण और कहीं सफेदी के कारण हमारी यह ऐतिहासिक धरोहर काल कवलित हो गयी है।

यात्रा एवं संघ

जैन जगत में सामूहिक तीर्थ दर्शन का बहुत महत्त्व है। सामूहिक तीर्थ यात्रा का आयोजन करने वाले भाविक को हम संघपति कहते हैं। इन संघों के साथ बड़े बड़े आचार्य शिष्य समुदाय के साथ विहार करते थे। जैन साधु तो चातुर्मास छोड कर शेष आठ मास विहार करते ही रहते हैं। इन विहारों में वे मार्ग में आने वाले तीर्थों के दर्शन करते ही हैं। जीरावल तीर्थ के दर्शनार्थ आए संघों की एवं आचार्यों की संक्षिप्त सूची यहां दे रहा हूँ। इस तीर्थ पर आए बहुत थोड़े संघों एवं आचार्यों का पता हमें लग सका है।

वीर संवत् ३३० के आसपास जैनाचार्य देवसूरिजी महाराज अपने सौ शिष्यों सहित यहां विहार करते हुए आये थे एवं इन्हीं ने अमरासा द्वारा निर्मित इस मन्दिर की वीर संवत् ३३१ वैशाख सुदी १० को शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठा करवाई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रम की चौथी सदी में (लगभग ३९५ वि. सं.) जैनाचार्य श्री मेरूसूरीश्वरजी महाराज एक विशाल संघ को लेकर इस तीर्थ में पधारे थे।

संवत् ८३४ के आसपास जैनाचार्य श्री उद्योतनसूरिजी ने १७ हजार आदमियों के संघ के साथ इस तीर्थ की यात्रा की थी। इस संघ के संघपति बडली नगर निवासी लखमण सा थे। ये उद्योतनसूरि तत्वाचार्य के शिष्य थे। इन्होंने वि. सं. ८३५ में जालोर में कुवलयमाला नाम की एक प्राकृत कथा की रचना की थी।

विक्रमी संवत् १०३३ में तेतली नगर निवासी सेठ हरदासजी ने एक बड़ा संघ निकाला था। इस संघ के साथ जैनाचार्य श्री सहजानन्दसूरीश्वरजी महाराज थे।

विक्रमी संवत् ११८८ में जैनाचार्य श्रामदेवसूरिजी की अध्यक्षता में जाल्हा श्रेष्ठी ने एक बहुत बड़े संघ के साथ इस तीर्थ की यात्रा की।

विक्रमी संवत् १३९३ में प्राग्वाट वंशीय भीला श्रेष्ठी ने राहेड नगर से एक बड़ा संघ निकाला जिसमें जैनाचार्य श्री कक्कसूरिजी सम्मिलित हुए। इन कक्कसूरिजी ने वि. सं. १३७८ में आबू के विमलवसही मन्दिर में आदिनाथ के बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी। इन्होंने बालोतरा, खम्भात, पेथापुर, पाटण एवं पालनपुर के जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई थी।

विक्रमी संवत् १३०३ में चित्रवालगच्छीय जैनाचार्य श्री आमदेवसूरिजी सेठ आम्रपाल संघवी के संघ के साथ जीरावल तीर्थ पधारे।

विक्रमी संवत् १३१८ में खीमासा संचेती ने जैनाचार्य श्री विजयहर्षसूरिजी की निश्रा में एक संघ यात्रा का आयोजन किया।

वि. सं. १३४० में मालव मंत्रीश्वर पेथडशाह के पुत्र झांझण शाह ने माघ सुदी ५ को एक तीर्थ यात्रा का संघ निकाला था। यह संघ जीरावल आया था। यहां संघवी ने एक लाख रुपये मूल्य का मोती एवं सोने के तारों से भरा चंदोबा बांधा था। इसका वर्णन पंडित रत्नमंडलगणी ने अपने 'सुकृतसागर' में किया है।

वि. सं. १४६८ में संघपति पातासा ने खरतरगच्छाचार्य श्री जिनपद्मसूरिजी महाराज की निश्रा में एक तीर्थ यात्रा का आयोजन किया।

मांडवगढ़ वासी झांझण शाह के पुत्र संघवी चाहड़ ने जीरावल एवं अर्बुद गिरि के संघ निकाले थे। उनके भाई आल्हा ने जीरावल में एक चंदोबे वाला महामण्डप तैयार करवाया था—

"जीरापल्ली महातीर्थे मण्डपं तु चकार सः।
उत्तोरणं महास्तम्भं वितानांशुकभूषितम्॥"
—काव्य मनोहर सर्ग-७

खंभात निवासी साल्हाक श्रावक के पुत्र राम और पर्वत ने वि. सं. १४६८ में जीरापल्ली पार्श्वनाथ तीर्थ में यात्रा कर बहुत धन खर्च किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि. सं. १४७५ में तपागच्छीय जैनाचार्य श्री हेमन्तसूरिजी महाराज के साथ संघपति मनोरथ ने एक विशाल तीर्थ यात्रा का आयोजन किया।

वि. सं. १४८३ में वैशाख सुदी १३ गुरुवार के दिन अंचलगच्छ के आचार्य मेरुतुङ्गसूरि के पट्टधर जयकीर्तिसूरि के उपदेश से पाटन निवासी ओसवाल जातीय मीठडिया गोत्रीय लोगों ने इस तीर्थ में पांच देहरियों का निर्माण करवाया था। —(पूर्णचन्द्र नाहर, जैन लेख संग्रह खंड—१ लेख ९७३)

वि. सं. १४८३ में ही भाद्रपद वदि ७ गुरुवार के दिन तपागच्छीय आचार्य भुवनसुन्दरसूरि के आचार्यत्व में संघ निकालने वाले कल्वरगा नगर निवासी ओसवाल कोठारी गृहस्थों ने इस तीर्थ में तीन देहरियों का निर्माण करवाया था। —(पूर्णचन्द्र नाहर, जैन लेख संग्रह खंड—१ लेख ९७४–९७६)

मेवाड़ के राणा मोकल के मन्त्री रामदेव की भार्या मेलादेवी ने चतुर्विध संघ के साथ शत्रुञ्जय, जीरापल्ली और फलौदी तीर्थों की यात्रा की थी।

—(संदेह दोलावली वृत्ति सं. १४८६)

खंभात के श्रीमाल वंशीय संघवी वरसिंह के पुत्र धनराज ने वि. सं. १४८९ में चैत्र वदि १० शनिवार के दिन रामचन्द्रसूरि के साथ संघ समेत इस तीर्थ की यात्रा की थी।

"रस-वसु-पूर्व मिताब्दे × × श्री जीरपल्लिनाथमर्बुदतीर्थं तथा नमस्कुरुते।"

—(अर्बुद-प्राचीन जैन लेख संदोह ले. ३०३)

वि. सं १४९१ में खरतरगच्छीय वाचक श्री भव्यराजगणि के साथ अजवासा सेठिया ने विशाल जन समुदाय के साथ संघ यात्रा का आयोजन किया।

विक्रम की १५वीं सदी में संघवी कोचर ने इस तीर्थ की यात्रा की थी। इनके वंशीयों के वि. सं. १५८३ के शिलालेख जैसलमेर के मन्दिर में विद्यमान हैं।

वि. सं. १५०१ में चित्रवालगच्छीय जैनाचार्य के साथ प्राग्वाट श्रेष्ठीवर्य पुनासा ने ३००० आदमियों के संघ को लेकर जीरावल तीर्थ की यात्रा की थी।

खरतगरच्छ के नायक श्री जिनकुशलसूरि के प्रशिष्य क्षेमकीर्ति वाचनाचार्य ने विक्रम की १४ वीं शताब्दी में जीरापल्ली पार्श्वनाथ की उपासना की थी।

संवत् १५२५ में अहमदाबाद के संघवी गदराज डूंगरशाह एवं संड ने जीरापल्ली पार्श्वनाथ की सामूहिक यात्रा की थी। इस यात्रा में सात सौ बैलगाड़ियाँ थीं और गाते बजाते आबू होकर जीरावल पहुँचे थे। उनका स्वागत सिरोही के महाराव लाखाजी ने किया था। इनमें से गदाशाह ने १२० मन पीतल की ऋषभदेव भगवान् की मूर्ति आबू के भीम विहार मन्दिर में प्रतिष्ठित करवाई थी।

—(गुरु गुण रत्नाकर काव्य सर्ग—३)

वि. सं. १५३६ में तपागच्छीय लक्ष्मीसागरसूरिजी की निश्रा में श्रेष्ठीवर्य करमासा ने इस पवित्र तीर्थ की यात्रा की थी। इन लक्ष्मीसागरजी ने जीरावलापार्श्वनाथ स्तोत्र की भी रचना की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दुरबार निवासी प्राग्वाट भीमाशाह के पुत्र डूंगरशाह ने शत्रुञ्जय, रैवतगिरी, अर्बुदाचल और जीरापल्ली की यात्रा की थी।

मीरपुर मन्दिर के लेखों के अनुसार सं. १५५६ में खंभातवासी वीसा ओसवाल बाई शिवा ने अपने पति के श्रेयार्थ जीरावल तीर्थ में दो गोखले बनवाये थे। यह बाई यात्रार्थ यहाँ आई थी। सं. १५५६ में ही प्राग्वाट संघवी रत्नपाल की भार्या कर्माबाई ने यहाँ की यात्रा की थी एवं उदयसागरसूरि के उपदेश से यहाँ एक देहरी बनवाई थी।

(यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भाग-१, पृष्ठ १२०-१२३)

वि. सं. १५५९ में पाटन के पर्वतशाह और डूंगरशाह नाम के भाइयों ने जीरावल अर्बुदाचल का संघ निकाला था। विक्रम की सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में आचार्य सुमतिसुन्दरसूरि के उपदेश से सद्गृहस्थ वेला ने मांडवगढ़ से एक संघ निकाला था। यह संघ जीरावल आया था। (सोमचारित्रगणि गुरुगुणरत्नाकर काव्य)

सारंगपुर के निवासी जयसिंह शाह आगरा के संघवी रत्नशाह ने अट्ठासी संघों के साथ आबू और जीरावल की यात्रा की थी। (सोमचारित्रगणि गुरुगुणरत्नाकर काव्य)

सं. १७४६ में शीलविजयजी की तीर्थमाला में ओसवाल सूरा व रत्ना दो भाइयों का उल्लेख आता है। उनके वंशज धनजी, पनजी व मनजी ने तीन लाख रुपया खर्च करके एक संघ निकाला था जो जीरावल आया था।

सं. १७५० में सौभाग्यविजय विरचित तीर्थमाला में जीरावल का उल्लेख है।

सं. १७५५ में ज्ञानविमलसूरि द्वारा लिखित तीर्थमाला में सूरिपुर से श्रावक सामाजी द्वारा निकाले गये संघ का वर्णन है।

वि. सं. १८९१ में आषाढ़ सुदी ५ के दिन जैसलमेर के जिनमहेन्द्रसूरि के उपदेश से सेठ गुमानचन्दजी बाफना के पांच पुत्रों ने तेईस लाख रुपये खर्च कर श्री सिद्धाचल का संघ निकाला था। इस संघ ने ब्राह्मणवाड़ा, आबू, जीरावला, तारंगा, शंखेश्वर, पंचासर एवं गिरनार की यात्रा की थी। इस सम्बन्ध का वि. सं. १८९६ का लेख जैसलमेर के पास अमर सागर मन्दिर में विद्यमान है।

इसके अतिरिक्त १९ वीं और २० वीं सदी में निरन्तर कितने ही संघ निकले जिनकी सूची देना यहां सम्भव नहीं है। २० वीं सदी में तो यातायात का अच्छा प्रबन्ध होने के कारण प्रतिवर्ष पचासों संघ इस तीर्थ में आते रहते हैं जिनका उल्लेख करना मात्र पुस्तक का कलेवर बढ़ाना होगा।

इस तीर्थ पर बड़े बड़े आचार्य चातुर्मास के लिये पधारते थे एवं तीर्थ की प्रभावना में वृद्धि करते थे।

अंचलगच्छीय श्री मेरुतुङ्गसूरिजी महाराज ने यहां अपने १५२ शिष्यों के साथ चातुर्मास किया था।

आगमगच्छीय श्री हेमरत्नसूरिजी ने अपने ७५ शिष्यों के साथ इस तीर्थ की पवित्र भूमि पर चातुर्मास किया था। इस गच्छ के श्री देवरत्नसूरिजी ने अपने ४८ शिष्यों सहित इस तीर्थ भूमि पर चातुर्मास किया था।

उपकेशगच्छीय श्री देवगुप्तसूरिजी महाराज ने अपने ११३ शिष्यों सहित, कक्कसूरिजी ने अपने ७१ शिष्यों सहित एवं वाचनाचार्य श्री कपूरप्रियगणि ने अपने २८ शिष्यों के साथ अलग अलग समय पर यहां चातुर्मास किये थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार खरतरगच्छ के श्री जिनतिलकसूरिजी महाराज ने अपने ५२ शिष्यों के साथ एवं कीर्तिरत्नसूरिजी ने अपने ३१ शिष्यों सहित यहां अलग अलग चातुर्मास किये थे।

तपागच्छीय श्री जयतिलकसूरिजी महाराज ने अपने ६८ शिष्यों के साथ यहां चातुर्मास किया था और मुनि सुन्दरसूरिजी ने भी अपने ४१ शिष्यों के साथ यहां चातुर्मास किया था। इन मुनि सुन्दरसूरिजी के उपदेश से सिरोही के राव सहसमल ने शिकार करना बन्द कर दिया था एवं पूरे क्षेत्र में अमारी का प्रवंतन करवाया। इन्होंने सन्तिकरं स्तोत्र की रचना की थी।

जीरापल्लीगच्छीय उपाध्याय श्री सोमचन्दजी गणि ने अपने ५० शिष्यों के साथ इस तीर्थ की भूमि पर चातुर्मास किया था। नागेन्द्रगच्छीय श्री रत्नप्रभसूरिजी महाराज ने अपने ६५ शिष्यों सहित यहां पर चातुर्मास किया था। पोप्पलीगच्छीय वादी श्री देवचन्द्रसूरिजी महाराज ने अपने ६१ शिष्यों के साथ यहां चातुर्मास किया था, ये प्रभावक आचार्य शांतिसूरि के शिष्य थे। इसके अतिरिक्त बहुत से समर्थ जैनाचार्यों ने यहां विहार के दौरान विश्राम किया था। बहुत से आचार्यों ने जीरावल के जीर्णोद्धार में बहुत योगदान दिलवाया था, उनके नाम देवकुलिकाओं के शिलालेखों में उत्कीर्ण हैं।

जीरावला पार्श्वनाथजी के चमत्कार

भगवान् पार्श्वनाथ तो स्वयं चिन्तामणि हैं। उनके महाप्रभावक स्वरूप का वर्णन मैं तुच्छबुद्धि क्या कर सकता हूं ? यहां कुछ प्रसंग मात्र आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं।

(१) यह घटना वि. सं. १३१८ की है। जैनाचार्य श्री मेरुप्रभसूरिजी महाराज अपने २० शिष्यों सहित ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्री जीरापल्ली गाँव की ओर जा रहे थे। वे कुछ ही आगे बढ़े थे कि रास्ता भूल गये और बहुत समय तक पहाड़ी की झाड़ियों के आसपास चक्कर लगाते रहे किन्तु रास्ता नहीं मिला। उधर दिन अस्त होता जा रहा था। इस जंगल में हिंसक जानवरों की बहुलता थी और रात का समय जंगल में व्यतीत करना खतरे से खाली नहीं था। इस पर आचार्य श्री ने अभिग्रह धारण किया कि जब तक वे इस भयंकर जंगल से निकल कर श्री जीरावल पार्श्वनाथजी के दर्शन न करलेंगे, तब अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। इस अभिग्रह के कुछ ही समय बाद सामने से एक घुड़सवार आता दिखाई दिया। इस भयंकर घाटी में जहाँ उन्हें घंटों कोई आदमी दृष्टिगोचर न हुआ था, वहां घोड़े पर आदमी को आते हुए देखकर कुछ ढ़ाढस बंधा। घुड़सवार ने आचार्य श्री को जीरावल्ली गांव तक पहुँचा दिया। आचार्य श्री ने इस घटना का वर्णन किया है।

(२) विक्रम संवत् १४६३ के समय की बात है। ओसवाल जातीय एवं दुधेडिया गोत्रीय श्रेष्ठीवर्य आभासा ने भरुच नगर से १५० जहाज माल के भरे और वहां से अन्य देश में व्यापार के लिये रवाना हुआ। जब जहाज मध्य समुद्र में पहुँच गया तो समुद्र में बड़ा भारी तूफान उठा। सभी जहाज डांवाडोल होने लगे। आभासा को ऐसे संकट काल में शान्तिपूर्वक वापस लौटने का विचार आया और उसने प्रतिज्ञा की कि यदि उसके जहाज सही सलामत पहुँच जायें तो वहां पर पहुँचते ही सबसे पहले श्री जीरावल पार्श्वनाथजी के दर्शन करूंगा। और उसके बाद अन्य देश में व्यापार के लिये रवाना होऊंगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके जहाजों को वापस लौटाने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुक्म दिया। सबके सब जहाज बिल्कुल सुरक्षित वापस पहुँच गये और सेठ आभासा ने भी अपनी प्रतिज्ञानुसार वापस पहुँच कर सर्वप्रथम श्री जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ की यात्रा की।

(३) यह बात मुगल काल से सम्बन्ध रखती है। उनके शासन काल में मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों को ही राज्यकार्य में स्थान प्राप्त होता था। पोरवाड जातीय सेठ मेघासा अपने गुणों के कारण मुगल राज्य में एक अच्छे प्रतिष्ठित कार्य पर नियुक्त थे। मुगल बादशाह भी उन पर प्रसन्न थे। इस कारण अन्य मुसलमानों के दिल के अन्दर ईर्ष्या भाव बना रहता था। वे लोग मेघासा को अपना कट्टर शत्रु समझते थे और सम्राट् को मेघासा के विरुद्ध कुछ न कुछ शिकायतें किया करते थे। नित्यप्रति की शिकायतों से सम्राट् के हृदय में एक दिन बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। कान भरने वालों ने आग में तेल का काम किया और क्रोध के आवेश में सम्राट् ने हुक्म जारी कर दिया कि सेठ मेघासा की धन-सम्पत्ति को लूट लिया जाये और मेघासा को जान से मार दिया जाये।

सम्राट् की इस आज्ञा का किसी न किसी प्रकार एक राजपूत मेहरसिंह को पता चल गया और उसने आकर मेघासा को खबर दी। मेघासा ने सम्राट् की आज्ञा से बचने का कोई और उपाय न पाकर धर्म शरण ली। उस खबर के मिलते ही अपने मकान में तुरन्त श्री जीरावला पार्श्वनाथजी का ध्यान प्रारम्भ कर दिया। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि यह महान् संकट टल गया तो वह जीवन पर्यन्त जीरावला पार्श्वनाथ के नाम की माला जपे बिना अन्न जल ग्रहण नहीं करेगा। उधर कुछ समय पश्चात् सम्राट् का क्रोध शान्त हुआ। उन्हें अपने हुक्म पर पश्चात्ताप हुआ। सम्राट् ने मार डालने का हुक्म वापस ले लिया और उसके विरुद्ध जो बातें सुनी थीं उसकी जांच आरम्भ की। जांच के बाद सम्राट् को मालूम हुआ कि सेठ के विरुद्ध कही गई बातें निराधार और बनावटी हैं। सम्राट् ने मेघासा की ईमानदारी, वफादारी और सच्चाई पर प्रसन्न होकर एक गांव भेंट में दिया।

(४) एक बार ५० लुटेरे इकट्ठे होकर आधी रात के समय चोरी के इरादे से मन्दिर में घुसे और अन्दर जाकर सब सामान और नकदी संभाल ली। हर एक ने अपने लिये एक-एक पोटली बाँध कर सिर पर रखी और जिस तरफ से अन्दर घुसे थे उसी ओर से बाहर जाने लगे। इतने में सबकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और उन्हें कुछ भी दिखाई न देने लगा। वे जिधर जाते उधर ही उनका पत्थरों से सिर टकराता। पत्थरों की चोटें खाकर उनके सिरों से खून बहने लगा। इस प्रकार निकलने का प्रयत्न करते हुए रात गुजर गई। सुबह वे सब पकड़ लिये गये।

(५) जीरापल्ली स्तोत्र के रचयिता अंचलगच्छाधिपति पू. आचार्य मेरुतुङ्गसूरि जब वृद्धावस्था के कारण क्षीणबल हो गये तब उन्होंने जीरावला की ओर जाते हुए एक संघ के साथ ये तीन श्लोक लिखकर भेजे—

१. जीरापल्लीपार्श्वे पार्श्वयक्षेण सेवितम्।
अर्चितं धरणेन्द्रेन पद्मावत्या प्रपूजितम् ॥१॥

२. सर्वमन्त्रमयं सर्वकार्यसिद्धिकरं परम्।
ध्यायामि हृदयाम्भोजे भूतप्रेतप्रणाशकम् ॥२॥

३. श्री मेरुतुङ्गसूरीन्द्रः श्रीमत्पार्श्व प्रभोः पुरः।
ध्यानस्थितं हृदि ध्यानयन् सर्वसिद्धि लभे ध्रुवम् ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघपति ने जब उन तीनों श्लोकों को भगवान् के सामने रखा तो अधिष्ठायक देव ने संघ की शान्ति के लिये सात गुटिकायें प्रदान की थीं एवं यह निर्देश दिया था कि आवश्यकता पड़ने पर इन गुटिकाओं का प्रयोग करें।

(६) लोलपाटक (लोलाड़ा) नगर में सर्प के उपसर्ग होने से मेरुतुङ्गसूरिजी ने पार्श्वनाथ महामन्त्र यन्त्र से गर्भित 'ॐ नमो देवदेवाय' स्तोत्र की रचना की जिससे सर्प का विष अमृत हो गया।

(७) संवत् १८८९ में मगसर वदी ११ के दिन बड़ौदा में आचार्य शान्तिसूरि को स्वप्न में भगवान ने प्रकट होने का कहा। शान्तिसूरि जी के कहने से सेठ ने जमीन खोद कर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्राप्त की। प्रतिमा को सर्व कल्याणकारिणी होने के कारण कल्याण पार्श्वनाथ के नाम से बड़ौदा में मामा की पोल में प्रतिष्ठित किया गया है।

ये थोड़े से महत्त्वपूर्ण प्रसंग आपके सामने रखे हैं। यदि आस्था रखें तो आप भी चमत्कृत हो जायेंगे।

❀ ❀ ❀

जमल्लीणा जीवा, तरंति संसारसायरमणंतं।
तं सव्वजीवसरणं, णंदउ जिणसासणं सुइरं॥

जिसमें लीन हो जाने से प्राणी अनन्त संसार-सागर को पार कर लेता है तथा जो सम्पूर्ण प्राणियों के लिए शरण के समान है, ऐसा जिन-शासन लम्बे समय तक समृद्ध रहे।

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुह-विरेयणं अमिदभयं।
जरमरणवाहिहरणं, खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥

विषय-सुख का विरेचन करने, जरा मरणरूपी व्याधि को दूर करने तथा सभी दुःखों का नाश करने के लिए जिन-वचन अमृत समान औषधि है।

जय वीयराय! जयगुरू! होउ मम तुह पभावओ भयवं।
भवणिव्वेओ मग्गाणुसारिया इट्ठफलसिद्धी॥

हे वीतराग! हे जगद्गुरु! हे भगवान्! आपके प्रभाव से मुझे संसार से विरक्ति, मोक्ष-मार्ग का अनुसरण और इष्ट-फल की प्राप्ति होती रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org